समयसार! ३३ गाथा का अन्तिम है न? ३३ गाथा पूरी हुई। सूक्ष्म विषय है। आहाहा! **यहाँ भी पूर्व कथनानुसार....** क्या? कि जो प्रथम, आत्मा ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप, वह दृष्टि में लिया, अपनी जो ज्ञान की पर्याय है, उसमें ज्ञायकस्वभाव अतीन्द्रिय आत्मदल ज्ञान में लिया तो ज्ञानस्वभाव के साथ एकत्व हुआ तो वह प्रथम स्वभाव की स्तुति कही जाती है। केवली की स्तुति कहो या केवलज्ञानमय भगवान आत्मा, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त ईश्वरता आदि अनन्त गुण का पिण्डरूप प्रभु, उस ओर की दृष्टि करके राग की एकता तोड़ना, वहाँ स्वभाव की स्तुति हुई।

त्रिकाल ज्ञायक का सत्कार हुआ, आदर हुआ, उपादेय हुआ तो उस सम्यग्दर्शन में त्रिकाली भगवान का आदर हुआ तो वह परमात्मस्वरूप की, केवली परमात्मा — अपना स्वरूप, उसकी पहले नम्बर में स्तुति की गयी। आहाहा! ऐसी बात है। बाद में वैसा अनुभव हुआ तो भी, अभी पर्याय में राग-द्वेष मोह आदि का अस्थिरता का भाव, ज्ञानी को भी रहता है। आहाहा! वह अस्थिरता का भाव, वह कर्म का भावक भाव के अनुसार होता था, उसे अपने स्वभाव का उग्र आश्रय लेकर,.... वह राग-द्वेष आदि परिणाम, समकिती ज्ञानी को भी होते हैं। आहाहा! समकिती ज्ञानी को भी राग-दुःखभाव होता है, जब तक आनन्द पूर्ण नहीं है, आहाहा! तब तक धर्मी-आनन्द का अनुभवी परन्तु अल्प आनन्द का अनुभव है तो साथ में राग, द्वेष, चारित्र का दोष (है), दर्शन का दोष नहीं।

यह पुण्य और पाप का भाव उत्पन्न होता है, यह ज्ञानी को भी दुःखरूप है, क्योंकि पूर्ण आनन्द तो प्राप्त हुआ नहीं, आहाहा! तो यह राग, द्वेष, यह दुःखरूप दशा, कर्म / भावक के अनुसार होती थी, अपना इतना आश्रय कम था। सूक्ष्म बात है भगवान! मार्ग कोई सूक्ष्म है। इस अपने चैतन्यस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो हुआ परन्तु विषय और विशेष आश्रय से राग-द्वेष का परिणाम-भाव्य था, उसे दबा देना, उपशम करना, यह दूसरे प्रकार की स्तुति; दूसरे प्रकार की अर्थात् दूसरे नम्बर की नहीं; नम्बर तो उसका ऊँचा है। आहाहा!

आत्मा... आहाहा! 'मेरा नाथ मेरे आँगन में पधारा, पर्याय में भगवान पधारे।' सुमेरुमलजी! आहाहा! जिसकी प्रजा में प्रजावन्त बादशाह पधारे! आहाहा! ऐसा होने पर भी, धर्मी को बादशाह का अनुभव हुआ, फिर भी पर्याय में अभी कमजोरी से राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भाव - दुःखरूप भाव ज्ञानी को भी होते हैं। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द भगवान का उग्र आश्रय लेकर, वह (राग-द्वेष) उत्पन्न था, उसे दबा दिया।

श्रोता : उत्पन्न हुआ, उसे दबाया या बाद में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस उत्पन्न होने का अर्थ ? उत्पन्न था पहले। यहाँ उत्पन्न हुए ही नहीं। उत्पन्न थे, उसे यहाँ आत्मा का आश्रय लिया तो उत्पन्न होने ही नहीं दिया। आहाहा! क्या करे ? अरे, भगवान की वाणी कितना कहे। आहाहा! इस दबा दिया का अर्थ ? पहले था परन्तु वह था, उस ओर का आश्रय-पर का लक्ष्य छोड़कर... आहाहा!

धर्मी / समकिती अनुभवी .ज्ञानी... आहाहा! वह भी (उसको भी) पर के आश्रय से पर्याय में राग-द्वेष-दु:खदशा उत्पन्न थी। आहाहा! उसे होने से पहले दूर से हटाकर — ऐसा आया है या नहीं? आहाहा! भगवान आनन्द प्रभुस्वरूप का उग्र आश्रय लेकर, वह भाव्यरूप राग उत्पन्न था, उसे उत्पन्न होने नहीं दिया; होने नहीं दिया, उसे उपशम कहते हैं, ऐसी बातें हैं। अरे..रे! भाई! तेरा मार्ग कोई (अचिन्त्य)! आहाहा! यह दूसरी स्तुति है। पहले में भावेन्द्रिय क्षयोपशम की पर्याय, राग और निमित्त - पर, उनकी एकत्वबुद्धि थी, वह संकरदोष / मिथ्यात्व दोष था; वह संकरदोष, स्वभाव की एकाग्रता से पर की भिन्नता करके मिथ्यात्वरूपी संकरदोष का नाश कर दिया — ऐसा होने पर भी, अभी अस्थिरता का सम्बन्धरूपी संकरदोष है। आहाहा! पण्डितजी को अभी ठीक नहीं है?

आहाहा! यह आत्मा (का) अनुभव हुआ, ज्ञानी हुआ, सम्यग्दृष्टि हुआ, अरे! भावलिंगी मुनि-सन्त हुआ, उसको भी भावककर्म के अनुसार राग-द्वेष, क्रोध-मान की पर्याय दु:खरूप होती थी। समझ में आया? उसने स्वभाव का आश्रय लेकर,... पुरुषार्थ की तीव्रता क्षय में चाहिए नहीं परन्तु पहले जो पुरुषार्थ था, उससे उग्र पुरुषार्थ करके-स्वभाव की ओर झुकने से वह राग-द्वेष की दु:ख की पर्याय दब जाती है, वह दूसरे प्रकार की स्तुति है।

तीसरे प्रकार की — **भाव्यभावक भाव का अभाव....** अरे! ऐसी बातें हैं। यह भावक जो कर्म जड़, उसके अनुसार अपनी पर्याय जो भाव्यरूप विकार होती थी — ऐसा जो भाव, उसका अभाव। आहाहा! वह क्षीण हुआ। आहाहा! अपने आत्मा में जो सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ था, तदुपरान्त स्थिरता का - उपशम का पुरुषार्थ था, तदुपरान्त उग्र पुरुषार्थ से... आहाहा! बात बहुत कठिन भाई! यह कभी अनन्त काल में किया नहीं, सुना नहीं। आहाहा! तो उस समकिती को भी, ज्ञानी को भी, अरे! मुनि को भी, भाव अन्तर जिसको प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द का वेदन है, मुनि को-उसको भी अभी प्रमादभाव है। आहाहा! छठवें गुणस्थान में महाव्रत का भाव, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति की श्रद्धा, भक्ति का भाव आता है परन्तु है वह दु:खरूप। समझ में आया? उसे अपने भगवान आनन्द का नाथ प्रभु सच्चिदानन्द स्वभाव अनाकुल शान्तिरस का भण्डार प्रभु का उग्र आश्रय लेकर, भलीभाँति पुरुषार्थ

करके, आहाहा! उस भाव्यभावक भाव का अभाव कर दिया। यह तीसरे प्रकार की-तीसरे नम्बर की परन्तु ऊँचे प्रकार की स्तुति (है)। अरे..अरे! ऐसी बातें हैं! समझ में आया?

कोई ऐसा ही मान ले कि सम्यग्दर्शन और अनुभव हुआ तो अब उसको दुःख की दशा है ही नहीं — तो उसे सम्यग्दर्शन का पता नहीं है। समझ में आया? आहाहा! तो उसको अभी आत्मा क्या और दर्शन क्या, ज्ञान क्या? — उसका बिल्कुल पता नहीं है। आहाहा! अपनी पर्याय में जब तक श्रेणी का पुरुषार्थ न हो — क्षपकश्रेणी का-अन्तिम बात यह है न? तब तक पर्याय में भाव्य अर्थात् भावक कर्म के अनुसार, अपने पुरुषार्थ की कमजोरी से जो भाव्य अर्थात् राग-द्वेषरूपी दुःखदशा उत्पन्न होती थी, आहाहा! उसको अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ में उग्र पुरुषार्थ करके विशेष झुकने से उस राग की-दुःख की पर्याय का क्षय होता है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं बापू! अरे! मार्ग कोई अलौकिक है भाई! यह कोई पण्डिताई से समझ में आता है - ऐसी चीज नहीं है। शास्त्र के पठन से भी यह बात (समझ में नहीं आती।) आहाहा!

यह कहेंगे स्तुति में — स्तुति का ऐसा अर्थ किया है भाई! यह श्लोक आयेगा न? २७ — 'चित्स्तुत्यैवसैवं' तीसरे पद में है, उसमें अर्थकार ने अर्थ किया है, वह आयेगा अब बाद में, कि भगवान पूर्णानन्द के नाथ का कथन करना, स्मरण करना और उसका अनुभव करना, यह उसकी स्तुति है। समझ में आया? तीन बोल लिये हैं — कथन, स्मरण, अनुभव। आहाहा! यह चित्स्तुति शब्द है न? उसके अर्थ में, भाई! कलश टीकाकार (पण्डित) राजमल... आहाहा! तीसरे का अन्तिम — इस २७ में तीसरे पद का अन्तिम बोल, तीसरी लाईन का 'चित्स्तुत्यैवसैवं भवेत' है न? यह तो एक-एक शब्द की कीमत है न? यह तो मन्त्र है प्रभु! आहाहा! है? यह कोई वार्ता-कथा नहीं है, यह तो भगवत्स्वरूप-भागवत कथा है। आहाहा! नियमसार में अन्तिम गाथा में था। आहाहा!

वह यहाँ कहते हैं कि **(यहाँ भी) पूर्व कथनानुसार 'मोह' पद को बदलकर....** जैसे मोह शब्द से पर तरफ की, समकिती को भी-ज्ञानी को भी — अनुभवियों को भी, परतरफ के मोह अर्थात् सावधानपना आता था। वीतरागभाव नहीं तो कमजोरी से परतरफ का मोह... मोह शब्द से मिथ्यात्व नहीं, (परन्तु) अस्थिरता का भाव-मोह, वह दुःख का

भाव आता था, उसको स्वभावसन्मुख की उग्रता से क्षय कर दिया — तो ऐसा मोहपद जहाँ लिया था, वहाँ **राग....** ले लेना। है ? आहाहा! पहला बोल। भगवान आत्मा वीतराग आनन्दकन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का जिनबिम्ब वीतरागी आनन्द का उग्र आश्रय लिया तो राग उत्पन्न नहीं होता तो उसे नाश किया - ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बातें! समझ में आया ?

राग-द्वेष.... समकिती ज्ञानी धर्मात्मा अनुभवी को भी - द्वेष का अंश तो आता है। आहाहा! और द्वेष का वेदन भी है परन्तु अब विशेष-ज्ञायकस्वभाव सन्मुख विशेष झुकने से द्वेष के वेदन का नाश कर देते हैं। आहाहा! ऐसी बातें अब, बापू! भगवान अन्दर त्रिलोकनाथ चैतन्य प्रभु परमेश्वर विराजता है। वह परमेश्वर है। आहाहा! उस प्रभु की ओर का पुरुषार्थ, वह अपने पाने का पुरुषार्थ है। उस प्रभु की ओर का विशेष पुरुषार्थ, विशेष आनन्द की प्राप्ति का उपाय है। वह क्षय (कहते हैं।) आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बात कठिन पड़ती है; इसलिए लोग दूसरे रास्ते चढ़ गये हैं - व्रत करना, अपवास करना, यह करना, वह करना....

श्रोता : गुरु कहे ऐसा करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु को भान नहीं होता और गुरु कहे। बालचन्दजी! ऊपर कहा ऐसा माना -—व्रत करो, अपवास करो, भगवान! वह तो अपवास है। अपवास अर्थात् राग का मन्दभाव है, वह आत्मा में अपवास-माठावास है; वह उपवास नहीं, उपवास नहीं। उपवास इसको कहते हैं, भगवान आनन्द के नाथ (में) उप अर्थात् समीप में जाकर अन्दर स्थिर होना, बसना। बालचन्दजी! इसका नाम उपवास है, बाकी तो लंघन है।

श्रोता : गुरु उसे लंघन कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लंघन है, कषाय है, विषय है 'आहारो त्यागो तज विजयते' इसमें राग और विषयवासना का त्याग और विशेष आनन्द की उत्पत्ति, उसे उपवास कहते हैं। 'शेषम् लंघन विधु' शेष को लंघन कहते हैं। आहाहा! भगवान तीन लोक का नाथ पूर्णानन्द प्रभु की सिद्ध पर्याय से भी अनन्त-अनन्त शक्ति का सागर भगवान पड़ा है। आहाहा! उसके समीप जाकर उसमें बसना, विश्राम लेना, उसका नाम तप और उपवास

कहते हैं। समझ में आया? जैसे स्वर्ण को गेरु लगाने से.... गेरु होता है न गेरु? स्वर्ण शोभित-सुशोभित होता है; वैसे भगवान आत्मा पूर्णानन्द के नाथ के अन्दर सन्मुख होकर उग्र आनन्द की दशा प्रगट करना, उसका नाम तप और उसका नाम संवर तथा निर्जरा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : आस्रव का निरोध तो भेदज्ञान से होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भेदज्ञान कहा न? राग से भिन्न होकर अपना अनुभव हुआ तो यह पहले प्रकार का भेदज्ञान, पश्चात् अस्थिरता का जो राग है, उसे भिन्न करके स्थिर होना, वह दूसरे प्रकार भेदज्ञान... आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : ऐसा स्पष्ट विवेचन कभी सुना ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं सुना है, बात ऐसी है भगवान! अरे! क्या कहें? प्रभु का विरह पड़ा, आहाहा! और भरतक्षेत्र साधारण-हल्का... ऐसा मार्ग अन्दर.... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य को तो विरह था, वे तो गये, आहाहा! अन्दर गये और भगवान के पास भी गये। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि वर्तमान भगवान के पास जाने की तो योग्यता नहीं परन्तु अन्दर जाने की योग्यता तो तेरी है नाथ!

आहाहा! अन्तर्मुख भगवान अन्तर में विराजते हैं। इस पर्याय को अन्तर्मुख करना, सन्मुख करना, सत्... सत्... सत्... प्रभु के सन्मुख करना, आहाहा! और राग तथा निमित्त की पर्याय से विमुख करना। आहाहा! यह वर्तमान पंचम काल में भी हो सकता है। समझ में आया? ऐसा मार्ग! लोगों ने कुछ का कुछ करके कुचल डाला है। सत्यमार्ग को भी असत्य ठहराने लगे हैं। आहाहा!

श्रोता : बलवान का तो विरोध होता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है, यह वस्तु है।

श्रोता : विरोध न हो तो बलवान नहीं कहलाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें उसके आत्मा की अन्दर विरोधता होती है, इसका उसे दुःख है (परन्तु) इसका उसे पता नहीं है। इस तत्त्व का विरोध, सत्य का (विरोध करे),

उसे अपनी पर्याय में दु:ख होता है और उसके फलरूप से निगोद आदि के दु:ख में जायेगा। प्रभु! ऐसे जीव का तिरस्कार कैसे किया जाये? उसके प्रति द्वेष कैसे किया जाये? आहाहा! आहाहा! भाई! उल्टी पर्याय से उसके परिणाम में-कुदरत के नियम में तो... आहाहा! 'निगोदं गच्छई' भगवान तो-कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं — वस्त्र का एक टुकड़ा रखकर हम मुनि हैं — ऐसा मानें, मनावे, माननेवाले को अनुमोदन करे 'निगोदं गच्छई।' उस निगोद में, प्रभु! एक श्वाँस में अठारह भव, वह कितना दु:ख होगा? भाई! इसने कभी विचार में लिया नहीं — ज्ञान के ऊपर इस बात को लिया नहीं। आहाहा! विपरीतमान्यता का फल... आहाहा! प्रभु तो निगोद कहते हैं। आहाहा! अविपरीत दृष्टि का फल मोक्ष कहते हैं। बीच में शुभाशुभभाव से गति मिले, वह दूसरी चीज है। आहाहा! मार्ग बहुत कठिन है भाई! आहाहा! यह राग-द्वेष। **क्रोध,...** क्रोध की पर्याय भी उत्पन्न होती है। समकिती को, मुनि को भी हो थोड़ा, आहाहा! ज्ञानी को अनुभवियों को भी आहाहा! पूर्ण वीतरागभाव नहीं हुआ वहाँ जरा क्रोध का भाव.... झूठी प्ररूपणा करते हैं, उसे समझाते हैं अरे! यह नहीं भाई! तो वह भी एक ऐसा विकल्प/द्वेष है — ऐसा भाव आता है, उसको स्वभाव की उग्रता का आश्रय लेकर नाश कर देना। आहाहा!

क्रोध, मान.... थोड़ा मान भी आता है समकिती को अनुभवी को। बाहुबली और भरत दोनों ज्ञानी-समकिती, अनुभवी थे, युद्ध में चढ़े। आहाहा! है अनुभवी, समकिती परन्तु वह द्वेष का अंश आया, वह दु:खरूप आया। आहाहा! समकिती को भी दु:ख का अनुभव आता है। आहाहा!

श्रोता : ऐसे महापुरुष क्यों लड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़े! आया, चारित्र का ऐसा कोई (दोष) है। अन्दर में भान है कि यह दोष है और इससे तो मेरी चीज भिन्न है परन्तु मैं दोष के परिणाम में आ गया हूँ।

श्रोता : महापुरुष लड़े तो दूसरों का क्या बाधा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कोई हो महापुरुष। यह तो ऐसा दृष्टान्त दिया है कि ऐसे एकावतारी — उसी भव में दोनों मोक्ष जानेवाले हैं। भगवान ने कहा ये दोनों चरमशरीरी हैं और समकिती आत्मज्ञानी हुए और दो भाई सहोदर, उन्हें पिताजी ने राज्य के भाग तो

कर दिये थे, फिर भरत चक्रवर्ती जब उनको आधीन करने गये तो बाहुबली ने कहा — भगवान ने तो दो भाग कर दिये हैं, अब तुम लेने को क्यों आये ? देखो, यह समकिती, अनुभवी, ज्ञानी ! आहाहा ! राग है, क्रोध, मान - इतना मान है, जरा मान है। आता है न बाहुबलीजी ध्यान में थे, बेल लिपट गयी थी, परन्तु जरा ऐसा मान रहा कि यह जमीन भरत की है — ऐसा जरा मान रह गया। श्वेताम्बर में ऐसा कहते हैं कि उनकी बहिनें वहाँ आयीं, बाहुबली ध्यान में खड़े थे और थोड़े मान में थे, मुनि हैं — भावलिंगी सन्त हैं, अनुभवी, छठे गुणस्थान में आत्मज्ञानी, तदुपरान्त शान्ति परन्तु उनको भी जरा मान का अंश आ गया। आहाहा !

तब बहिनें ऐसा कहती हैं 'वीरा मोरा गज थकी उतरो' यह गज अर्थात् हाथी — मान का हाथी। यह सब सज्झाय बहुत देखी थी। हमने तो दुकान पर सज्झायमाला, चार आती है न ? एक-एक सज्झायमाला में दो सौ, ढाई सौ श्लोक आते हैं। एक सज्झाय में पाँच, दस, पन्द्रह लाईनें आती हैं — दुकान पर सब देखा था। अठारह, उन्नीस, बीस वर्ष की उम्र में, सत्तर साल पहले की बात है, तो उसमें यह आता है। हम तो पहले श्वेताम्बर थे न, और वह पढ़ा तो उसमें यह आया था 'वीरा मोरा गज थकी उतरो रे' मुनि हैं आत्मज्ञानी अनुभवी (हैं) परन्तु जरा संज्वलन का मान रह गया, अन्दर खटक (रह गयी) 'गज थकी केवल न होय रे, वीरा मोरा गज थकी उतरो।' अपने यहाँ ऐसा आता है कि वे ध्यान में हैं। उसमें भरत आते हैं। उसमें - परमागम मन्दिर में है, भरत नमन करते हैं और जहाँ ऐसा देखा, ओहोहो ! भरत को तो कुछ नहीं है, जहाँ भरत नमन करते थे, वहाँ उनका मान गल गया। आहाहा ! और एकदम क्षपक श्रेणी लगाकर केवलज्ञान ! यह क्षीणमोह.... आहाहा !

(यह क्षीणमोह दृष्टि) — भगवान को अच्छे पानी से तालाब भरा हो और बाहर निकालना हो तो जरा इतना करे, पानी का धोध निकलते, आहाहा ! इसी प्रकार भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, केवलज्ञान का कन्द, उसमें जहाँ एकाग्र हुआ, उतना मान का अंश था, उससे हटकर.... आहाहा ! अन्दर गये तो केवलज्ञान (हो गया)। जलहल ज्योति चैतन्य पर्याय में — भगवान पर्याय में पूर्णपने आ गया। आहाहा ! अपने दिगम्बर में ऐसा है। भरत नमन करते हैं — ऐसा देखते हैं, उन्हें ऐसा लगता है कि इस भरत को कुछ दुःख हुआ होगा कि मैंने अनादर किया। चक्र चलाया था न ! आहाहा ! भरत ने चक्र चलाया था

परन्तु वह चक्र वापस घुमा कि चरमशरीरी और सहकुटुम्बियों को कोई चक्र मार नहीं सकता। आहाहा! कहो, समकिती को-भाई को चक्र मारने का भाव आया - राग। वह समकिती है, ज्ञानी अनुभवी (है), फिर भी ज्ञानी को भी उस दुःख का अनुभव हुआ। आहाहा! वे अपने स्वभाव में जाते हैं, तल में महा भगवान विराजते हैं प्रभु! वह दृष्टि के विषय में तो आ गया था। अब, अन्दर स्थिरता में अन्दर गये। आहाहा! तो मान का नाश हो गया - ऐसी बात है भाई!

और अब **माया....** थोड़ा कपट भी होता है, समकिती को भी, आहाहा! अनुभवी को भी, ज्ञानी को भी थोड़ा कपट तो है। कपट कहो या दुःख कहो। कषाय है न? कष अर्थात् संसार और आय अर्थात् दुःख का लाभ। आहाहा! आहाहा! माया, **लोभ....** इच्छा होती है न वृत्ति में? अनुभव होने पर भी, सम्यग्दर्शन होने पर भी अनुभवी को राग की इच्छा - लोभ की इच्छा होती है, उसको स्वभाव का — निर्ग्रन्थस्वभाव जो भगवान आत्मा, उसका आश्रय लेकर लोभ का नाश कर देना — यह तीसरे प्रकार की ऊँची स्तुति है। अरे! अब ऐसा कहाँ याद रहे इसमें? आहाहा! **कर्म....** आठ कर्म। अभी समकिती को भी आठ कर्म हैं या नहीं? हैं? निमित्तरूप से कर्म है और उस ओर के झुकाव से जरा कमजोरी से विकार भी होता है; कर्म से नहीं, कर्म की ओर के झुकाव से। उसे अपने सन्मुख झुकाव करके, उस झुकाव का नाश कर देना। आहाहा! समझ में आया?

नोकर्म, मन, वचन, काय,.... देव-शास्त्र-गुरु, यह सब नोकर्म हैं। आहाहा! अनुभवी-समकिती को भी, नोकर्म के सम्बन्ध में जाते हैं तो वह भाव्य / विकारदशा होती है, दुःख होता है; उसे अपने स्वभाव का अनुसरण करके दुःख की उत्पत्ति नहीं होना, दुःख का नाश करना, यह आत्मा की तीसरे प्रकार की स्तुति है। ऐसी स्तुति! यह तो भगवान को ऐसा कहे — हे भगवान! शिवपथ हमको देना रे, शिवमारग। भगवान कहते हैं शिवमारग तेरे पास है; मेरे पास तेरा मार्ग नहीं है। आहाहा! विकल्प आता है — ज्ञानी को भी समकिती को भी अनुभवियों को भी भगवान की भक्ति का राग आता है, परन्तु है दुःख। आहाहा! समझ में आया? दुःख क्यों आता है? कि कमजोरी से आता है परन्तु जानते हैं कि यह दुःख है; मेरे आनन्द की चीज से विपरीत है। आहाहा! ऐसा धर्म!

ऐसे **मन, वचन, काय,....** मन, वचन, और काया की ओर का जरा सम्बन्ध है; बिल्कुल सम्बन्ध छूट गया हो तो सिद्ध हो जाये। आहाहा! मन, वचन, काया जो जड़ है, उसका अभी सम्बन्ध थोड़ा है, उसे स्वभाव का अनुसरण करके इतना सम्बन्ध तोड़ देना — नाश कर देना, यह तीसरी स्तुति है। आहाहा! **श्रोत्र,....** इन्द्रिय का भी सम्बन्ध है। अभी श्रवण करने का इतना सम्बन्ध है, इतना अभी दोष है। आहाहा! इस अन्तर के भगवान को भावेन्द्रिय से रहित, द्रव्येन्द्रिय से रहित, परइन्द्रिय से रहित-पर अर्थात् देव, गुरु, शास्त्र और कुटुम्ब-परिवार — ऐसा भगवान का, भगवानस्वरूप में जाकर उसका — तीक्ष्ण चैतन्यस्वभाव का अवलम्बन लेकर, उसका नाश करना। दूसरा कोई उपाय है नहीं। मालचन्दजी! ७७ वर्ष में वहाँ कहीं सुना नहीं होगा, है नहीं न वहाँ? कठिन काम बापू, बहुत काम... भाई!

अनुभव होने के बाद भी दु:ख होता है — ऐसा कहते हैं। दु:ख न हो तो पूर्ण आनन्द होना चाहिए। आहाहा! समकिती-ज्ञानी-अनुभवी जानते हैं कि मेरी पर्याय में दु:ख है। मैं दु:ख वेदता हूँ और उस दु:ख का भोक्ता मैं हूँ। आहाहा! परन्तु अपने आनन्द का उग्र भोक्ता होकर, उस दु:ख का भोक्ता का नाश कर देता है। समझ में आया? अब ऐसी बातें! घर से बहिनें सुनने न आवें और वे पूछें — क्या कहते थे कौन जाने - ऐसा कहते थे। तुम यह तो सुनो तो पता पड़े ऐसा मार्ग है प्रभु! क्या कहें? अलौकिक बातें बापू! आहाहा! लोकोत्तर! यह आयेगा यहाँ। शरीर और आत्मा एक, यह तो लोकाचार से कहा जाता है, यह श्लोक आता है न फिर। यह लौकिक से कहा जाता है। आहाहा! बाद में यह आयेगा।

यहाँ तो पाँच इन्द्रियाँ **श्रोत्र, चक्षु,....** अब, **चक्षु,...** चक्षु इन्द्रिय के सम्बन्ध में भी जब तक है, वह इतना भाव्य दोष है। आहाहा! उस दोष को - दु:ख को भगवान का दर्शन करने में चक्षु इन्द्रिय का निमित्त है न बीच में? इतना सम्बन्ध हुआ न? और राग आया तो दु:ख है। 'राग आग दाह दहै सदा, तातैं समामृत सैविये' आहाहा! अन्तर आनन्द का नाथ समभावी अमृत पड़ा है। आहाहा! जैसे पानी में डुबकी मारकर स्नान करते हैं, आहाहा! वैसे ही आनन्द के नाथ में अन्दर डुबकी मारकर.... आहाहा! डूबकी कहते हैं न?

श्रोता : डूबकी

पूज्य गुरुदेवश्री : हिन्दी-हिन्दी। हमारे उमराला में, उमराला जन्म गाँव है न? बड़ी नदी है, कालूभार बड़ी (नदी है) तो एक कुँआ था, नदी में। हम तो बालक थे छोटी उम्र, १०-१२ वर्ष (की उम्र) देखने जाते थे तो जवान आदमी अन्दर पड़ते थे। उसे उभोकोसियो कहते हैं, जैसे कोश होता है न लोहे का। वैसे पानी में अन्दर सीधे पड़ते थे, पानी में-कुएँ में और जाकर नीचे से-तल से बालू-बालू बालू (रेत) लेकर अभी बाहर नहीं निकल सके परन्तु हाथ बाहर निकालते हैं कि देखो मैं तल में से रेत ले आया। कुएँ में - तल में जाकर हाथ ऊँचा करते हैं। देखा है, सब नजर से अभी दिखता है। इसी प्रकार यहाँ भगवान आत्मा चैतन्य सागर आनन्द का नाथ सागर, उसके तल में जाकर आनन्द की दशा का नमूना बाहर लाना - ऐसी बातें हैं।

यह **घ्राण,....** इतना जरा घ्राण इन्द्रिय का सम्बन्ध है न? अत्यन्त अनीन्द्रिय न हो, तब तक घ्राण इन्द्रिय का सम्बन्ध है, इतना भाव्य / दोष उत्पन्न होता है, उसे अपने स्वभाव के अनुसार करके नाश करना। इसी प्रकार **रसन,....** आहाहा! यह रसन का दृष्टान्त दिया था, परसों नहीं? आहाहा!

भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव जब तक संसार में हैं — शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ — छह खण्ड, छियानवें हजार स्त्री और छियानवें करोड़ सैनिक, अड़तालीस हजार नगर, बहत्तर हजार.... अड़तालीस हजार पाटन, और उनका आहार बत्तीस ग्रास का, एक ग्रास अरबों की कीमत.... जिसका एक ग्रास छियानवें करोड़ सैनिक पचा नहीं सकें, वह समकिती-ज्ञानी-क्षायिक समकिती, तीन ज्ञान का धनी — मति, श्रुत, अवधि (का धनी), उसे खाने का भाव आता है। भाव है, वह दुःख है - राग है। समझ में आया? तीर्थंकर को.... आहाहा! दुनिया को तो ऐसा लगता है ऐसा होगा! भाई! सुन तो सही! वह पुण्यवन्त प्राणी है। अकेली हीरा की भस्म, पन्ना की भस्म... पन्ना आता है न पन्ना, नीला! अपने पूनमचन्दजी हैं न? एक पन्ना साफ करने की एक मशीन का (छह हजार) एक मुसलमान; ऐसे तो बहुत, उस पन्ने की भस्म करते हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी अधिक खीर खा ली जाये तो पचे नहीं। मैसूब... मैसूब — एक सेर चने के आटे में चार सेर घी (से) मैसूब (पाक) होता है न! मैसूबपाक! एक टुकड़ा पाव सेर-डेढ़ पाव सेर का पचता नहीं। आहाहा! वह यह बत्तीस ग्रास... आहाहा! विकल्प आता है। आहाहा!

विकल्प आता है — समकिती / क्षायिक समकिती, तीर्थंकर भगवान को भी इतना दु:ख है। आहाहा! अनुभवी को भी दु:ख है। आहाहा!

श्रोता : उसका अभाव कब होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस अन्तर में स्वभाव का साधन होकर जाये तब। यह बात तो चलती है। आहाहा! अनाहारी पद अन्दर प्रगट हुआ, तब आहार लेने का विकल्प नाश हो गया। फिर भगवान को आहार नहीं, केवली को आहार नहीं। समझ में आया? श्वेताम्बर में कहते हैं, आहार लेते हैं — सब झूठ बात है। सर्वज्ञ परमात्मा जहाँ आत्मा अनाहारी स्वरूप है — ऐसी अनाहारी दशा प्रगट हो गयी; आहार नहीं, पानी नहीं, दवा नहीं, औषध नहीं, शरीर में रोग नहीं। आहाहा! परन्तु जब तक (पूर्ण) वीतरागता और अनाहारी पद प्रगट नहीं था, तब तक मुनिपद में भी, भगवान तीर्थंकर को भी मुनिपद में आहार की वृत्ति उठती थी। आहाहा! वह दु:ख था। आहाहा! तो उसको जीतते हैं, उसको अपने स्वभाव का आश्रय करके नाश कर देते हैं - ऐसी बात है। **इन पदों को रखकर सोलह सूत्रों का व्याख्यान करना....** अमृतचन्द्राचार्य का इतना शब्द है। **और इस प्रकार के उपदेश से अन्य भी विचार लेना।** और जयसेनाचार्य की टीका में, इससे असंख्य विभाव का विचार करना, असंख्य प्रकार का (विभाव)। संस्कृत में है। समकिती को भी, अनुभवियों को भी आहाहा! असंख्य प्रकार के विभावरूपी दु:खदशा उत्पन्न होती है। आहाहा! तो उसको स्वभाव का आश्रय लेकर, उसका नाश करना — ऐसा व्याख्यान करना। आहाहा!

भावार्थ : साधु.... यहाँ साधु की बात पहले ली है। जिन-जितेन्द्रिय लिया न? छठे गुणस्थान में साधु **पहले अपने बल से उपशमभाव के द्वारा....** समकित दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र भी है परन्तु अभी अस्थिरता का भाव है। मुनि को भी प्रमादभाव जो पंच महाव्रत का विकल्प है, वह भी जगपंथ-संसारपंथ-उदयपंथ है, उदयभाव है, दु:खरूप भाव है। आहाहा! उसको **अपने बल से उपशमभाव के द्वारा मोह को जीतकर,... दबाकर, फिर जब अपनी महा सामर्थ्य....** के बल से **मोह को सत्ता में से नष्ट करके....** आहाहा! महा सामर्थ्य पुरुषार्थ की उग्रता से अन्दर में जाने पर... आहाहा! सत्ता में से राग आदि यह जो सोलह पद कहे हैं अथवा असंख्य प्रकार का विभाव, उसको सत्ता

में से नाश करके **ज्ञानस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होते हैं....** भगवान अकेला ज्ञानस्वरूप है, जलहल ज्योति केवलज्ञान भगवान प्रगट होता है। आहाहा! अरिहन्त दशा — णमो अरिहन्ताणं कहते हैं। आहाहा! जिन्होंने अरि अर्थात् राग और द्वेषरूपी वैरी — अरि हन्त - णमो अरिहन्ताणं — जिन्होंने अरि का हनन किया।

श्रोता : अरिहन्त के धर्म में फिर हनन करने का आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ पर को कहाँ हनना है? यह तो उपदेश के वाक्य हैं। हनना भी नहीं है; वास्तव में तो स्वभाव के सन्मुख जाते हैं तो (राग-द्वेष) उत्पन्न नहीं होता तो हनन किया — ऐसा कहने में आता है - ऐसी बातें हैं। उन्हें हनन करना, तब तो अभी दृष्टि पर्याय पर रही है — ऐसा मार्ग बहुत... बापू! सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर का मोक्ष का पन्थ अलौकिक है! कहीं दुनिया के साथ मेल नहीं हो सकता। आहाहा! **(तब वे क्षीणमोह जिन कहलाते हैं।)**

कलश - २७

अब, यहाँ इस निश्चय-व्यवहाररूप स्तुति के अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं —

(शार्दूलविक्रीडित)

एकत्वं व्यवहारतो न तु पुनः कायात्मनोर्निश्चया-
न्नुः स्तोत्रं व्यवहारतोऽस्ति वपुषः स्तुत्या न तत्तत्त्वतः।
स्तोत्रं निश्चयतश्चितो भवति चित्स्तुत्यैव सैवं भवे-
न्नातस्तीर्थकरस्तवोत्तरबलादेकत्वमात्मांगयोः ॥२७॥

श्लोकार्थ : [कायात्मनोः व्यवहारतः एकत्वं] शरीर और आत्मा के व्यवहारनय से एकत्व है [तु पुनः] किन्तु [निश्चयात् न] निश्चयनय से नहीं है; [वपुषः स्तुत्या नुः स्तोत्रं व्यवहारतः अस्ति] इसलिए शरीर के स्तवन से आत्मा-पुरुष का स्तवन

व्यवहारनय से हुआ कहलाता है, [तत्त्वतः तत् न] निश्चयनय से नहीं; [निश्चयतः] निश्चय से तो [चित्स्तुत्या एव] चैतन्य के स्तवन से ही [चितः स्तोत्रं भवति] चैतन्य का स्तवन होता है। [सा एवं भवेत्] उस चैतन्य का स्तवन यहाँ जितेन्द्रिय, जितमोह, क्षीणमोह - इत्यादिरूप से कहा वैसा है। [अतः तीर्थकरस्तवोत्तरबलात्] अज्ञानी ने तीर्थंकर के स्तवन का जो प्रश्न किया था उसका इस प्रकार नयविभाग से उत्तर दिया है; जिसके बल से यह सिद्ध हुआ कि [आत्म-अंगयोः एकत्वं न] आत्मा और शरीर में निश्चय से एकत्व नहीं है।

कलश - २७ पर प्रवचन

अब, यहाँ इस निश्चय-व्यवहाररूप स्तुति के अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं —

एकत्वं व्यवहारतो न तु पुनः कायात्मनोर्निश्चया-
न्नुः स्तोत्रं व्यवहारतोऽस्ति वपुषः स्तुत्या न तत्तत्त्वतः।
स्तोत्रं निश्चयतश्चितो भवति चित्स्तुत्यैव सैवं भवे-
न्नातस्तीर्थकरस्तवोत्तरबलादेकत्वमात्मांगयोः ॥२७॥

आहाहा! '**कायात्मनोः व्यवहारतः एकत्वं**' भगवान आत्मा और शरीर दोनों को व्यवहार अर्थात् लोक शब्द से लौकिक... द्रव्यसंग्रह में आया था न भाई? द्रव्यसंग्रह में। व्यवहारनय अर्थात् लौकिक कथन। वही इन्होंने यहाँ लिखा है। व्यवहार अर्थात् लौकिक कथन। प्रभु! द्रव्यसंग्रह में लिखा है...

शरीर और भगवान प्रभु भिन्न अन्दर अरूपी आनन्दघन और यह शरीर मिट्टी-पिण्ड, धूल, दोनों को **व्यवहारनय से एकत्व** कथनमात्र से है। लोकरूढ़ि से कहा जाता है। समझ में आया? **किन्तु निश्चयनय से नहीं है;....** यथार्थस्वभाव की दृष्टि से ये दोनों एक नहीं, अत्यन्त भिन्न हैं। राग और आत्मा भिन्न है तो देह की तो क्या बात करना? आहाहा! समझ में आया? '**वपुषः स्तुत्या नुः स्तोत्रं व्यवहारतः अस्ति**' **इसलिए शरीर के स्तवन से आत्मा-पुरुष का स्तवन व्यवहारनय से हुआ कहलाता है,....** यह तो

कथनमात्र है। वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। **'तत्त्वतः तत् न' निश्चयनय से नहीं;....** तत्त्व से नहीं शरीर और आत्मा की स्तुति एक वह तत्त्व से एक नहीं, कथनमात्र से-व्यवहार से कहा जाता है। आहा! यह गाँव मेरा, शरीर मेरा, राजकोट मेरा - यह तो कथनमात्र है। राजकोट कहाँ तेरा है? आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार शरीर और आत्मा एक है यह तो कथनमात्र है। व्यवहार / लौकिक रूढ़ी का कथन है। **'तत्त्वतः तत् न' निश्चयनय से नहीं; निश्चय से तो 'चित्स्तुत्या एव' चैतन्य के स्तवन से ही....** इस अर्थ में राजमलजी ने लिया है, भाई! चैतन्य के स्तवन में बारम्बार कहना कि भगवान पूर्णानन्द शुद्ध आत्मा चैतन्य है - ऐसा कहना, ऐसा स्मरण करना, इसका अनुभव करना, यह स्तुति-तीन बोल लिये हैं। आहाहा! चैतन्य का स्वामी, यह समझे **'चित्स्तुत्या'** — स्तवन के तीन भेद कहे न....

विशेष आयेगा। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)